अन्तर्राष्ट्रीय वेदान्त मिशन की मासिक ई - पत्रिका
वेदान्त पीयूष
वर्ष २१
मई - २०२१
प्रकाशन - ०५

सम्पादिका :

स्वामिनी अमितानन्द सरस्वती

वेदान्त पीयूष

मई २०२१

प्रकाशक

आन्तराष्ट्रिय वेदान्त आश्रम,

ई - २९४८, सुदामा नगर

इन्दौर - ४५२००९

Web : https://www.vmission.org.in

email : vmission@gmail.com

ॐ
सदाशिवसमारम्भाम्
शंकराचार्य मध्यमाम्
अस्मदाचार्य पर्यन्ताम्
वन्दे गुरु परम्पराम्

वेदान्त पीयूष

विषय सूचि
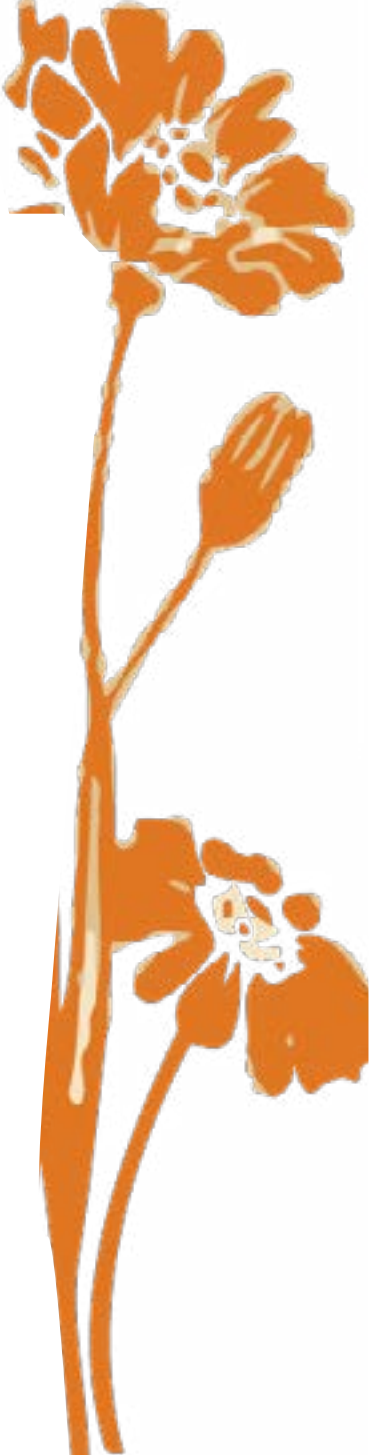
1.	श्लोक	7
2.	पू. गुरुजी का संदेश	8-9
3.	वेदान्त लेख	10-12
4.	दृग्दृश्य विवेक	14-17
5.	गीता चिन्तन	18-23
5.	श्री लक्ष्मण चरित्र	24-25
6.	जीवन्मुक्त	28-31
7.	कथा	32-33
8.	मिशन-आश्रम समाचार	34-53
9.	इण्टरनेट समाचार	54
10	आगामी कार्यक्रम	55
11	लिन्क	56

मई 2021

अकाण्डब्रह्माण्ड क्षयचकित देवासुरकृपा
विधेयस्यसीद्यस्त्रिनयन विषं संहृतवतः।
स कल्माषः कण्ठे तव न कुरुते न श्रियमहो
विकारोऽपि श्लाघ्यो भुवनभयभंगव्यसनिनः॥

(शिवमहिम्नः स्तोत्रम्)

हे त्रिनयन! असमय में अचानक ब्रह्माण्ड का नाश होता हुआ देखकर भयभीत देवता तथा असुरों के उपर कृपा करके आपने विषपान किया। उस वजह से आपके कण्ठ में नीला निशान रूप दाग हो गया। यह विकार होते हुए भी आपके कण्ठ में अत्यन्त शोभायमान हो रहा है। जो कि वाकई प्रशंसनीय है। ऐसा लगता है कि आपको समस्त लोकों के भय को दूर करने का व्यसन लगा हुआ है।

पूज्य गुरुजी का सन्देश

अपरोक्षानुभूति

सिद्धान्ततः वेदान्त का गुरुमुख से श्रवण करके नित्यानित्य विवेक करने पर आत्मा का अपरोक्ष अनुभव होता है। किन्तु अनुभव यह है कि प्रामाणिक ज्ञान से विवेक के उपरान्त भी अपरोक्ष ज्ञान नहीं होता है। उसका कारण अपने अन्दर इन्द्रियों से ही देखने के संस्कार और महत्व अत्यन्त प्रगाढ़ है। जो मासचक्षु से दीखता है वही सत्य है; यह हमने मान लिया है। मांसचक्षु सतही, दृश्य धरातल की, खण्डित, नश्वर दुनिया को दीखाती है। जो कि विकारी, आवागमनवाली है। उसे महत्व देकर जीवन का आधार बना लिया है। उसके उपरान्त सुख-दुःखादि रूप संसार अवश्यंभावि है।

इस अनित्य की दुनिया का नित्य ही अधिष्ठानभूत तत्त्व है। नित्य हर समय, कण-कण में, अपरोक्ष होना ही चाहिए। सब की आत्मा, सब का अधिष्ठान, कण-कण में, सर्वव्यापी है। यह सच्चिदानन्द परमात्मा हम ही है। उसे देखने में अनित्य, दृष्ट, ग्राह्य के प्रति महत्वबुद्धि कोश बनता है, वही अध्यारोप है जो इस अधिष्ठान को मानों छिपाता है।

इसकी कहानी नित्य से ही आरम्भ होती है। उसीकी माया से नामरूप की प्रस्तुति जल में अनेकों लहरादि की तरह हो गई है। उसके उपरान्त इन संकुचित उपाधियों के प्रति महत्व से खण्ड व संकुचिता की दुनिया में प्रवेश हो गया। दृश्य को महत्व देने से ही खण्ड की वजह से कामना आदि आते है। उस धरातल पर जीने का परिणाम छोटापन, असुरक्षा, भयादि रूप संसार है।

दरस्सल दृष्ट का होने न होने से संसारी वा ज्ञानी होने का कोई सम्बन्ध नहीं है। किन्तु उसके प्रति सत्यता तथा महत्वबुद्धि होना है। यदि इस एक बिन्दु को हमने हेण्डल किया कि जो इन्द्रियग्राह्य है, वह सत्य नहीं है। जो इन्द्रियों से नहीं दीखता है, उसका भी अस्तित्व है। इस विवेक से देखना ज्ञानचक्षु से देखना है। ज्ञानचक्षु का इतना महत्व हो कि चर्मचक्षु गौण हो जाएं।

मासचक्षु से प्रस्तुत नामरूप की दुनिया की सुन्दरता भी है, उसे देखने में समस्या नहीं है। जब इसकी सुन्दरता को देखकर उसके सृष्टा, ईश, कारणभूत सत्ता का स्मरण हो तो दृश्य के प्रति महत्व खतम होता जाता है और उससे निरपेक्ष होते जाते है। यही योग बन जाता है। जैसे जैसे दृश्य के प्रति निरपेक्ष होते जाते है, समस्त नामरूपात्मक, दृश्य तथा दृश्य की सम्भावनायुक्त अदृश्य का महत्व खतम होने पर भी हम देखनेवाले तो है ही। स्वयं को दृश्य से परिभाषित नहीं करते है, उससे सुख-दुःखी नहीं। इस प्रकार दृष्ट से मुक्त होते जाते है। दृष्ट से मुक्ति ही मुक्ति होती है। नित्यानित्य विवेक से मासचक्षु के द्वारा अनुभूत जगत की गौणता हो जाएं और ज्ञानचक्षु प्रधान बनें। तब ही पहले आत्मा की प्राप्ति अर्थात् अपरोक्ष अनुभव होकर सम्प्राप्ति अर्थात् जीवन्मुक्ति की प्राप्ति होती है।

Shamin ?

वेदान्त पीयूष

वेदान्त लेख
ब्रह्मप्राप्ति का स्वरूप

ब्रह्मस्वरूपता की प्राप्ति होने पर ही मुक्ति प्राप्त होती है। प्राप्ति का स्वरूप विचारणीय है। क्योंकि ब्रह्म हमारी आत्मा की तरह पहले से ही विराजमान हैं, अतः उसे हमें प्राप्त करना नहीं है। अज्ञानवश उसे अपने से पृथक् मान लिया था, अतः प्रामाणिक ज्ञान का आश्रय लेकर उस विषयक अज्ञान और विपरीत ज्ञान की निवृत्ति ही करनी है। वेदान्तशास्त्र का गुरुमुख से श्रवण करने पर ही अज्ञान की निवृत्ति होकर आत्मा की प्राप्ति होती है। जहां इस विवेक से नित्यतत्त्व को अपनी चिन्मयी सत्ता की तरह अपरोक्षतः जान लेते है।

इस ज्ञान की प्रक्रिया में नित्य-अनित्य का विवेक अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। आज हमारी असुरक्षा, भय आदि रूप संसार का कारण ही अपने बारे में छोटापन, जन्म-मरणादि से युक्त होने की धारणा अर्थात् अपने बारे में अनित्यता की धारणा है। इसका निश्चय हमने किसी प्रमाण का आश्रय लेकर नहीं किया है। देखादेखी में तथा जन्म-जन्मान्तरों के संस्कार की दृढ़ता के कारण अविचारपूर्वक किया हुआ निश्चय है। इस निश्चय के उपरान्त हम बाह्य विषयों के प्रति नित्यता का आरोपण करके उससे अपने छोटेपन आदि को दूर करके सुरक्षित व पूर्ण होने की चेष्टा करते हैं। इस प्रकार अनवरत संसरण चलता रहता है।

जब बाह्य विषयों से विरत होकर, अन्तर्मुख होते है और अपने बारे में विचार करके देखते है कि क्या अपने बारे में किया हुआ निश्चय प्रामाणिक व सत्य है? तब यह दीखाई देता है कि कितना निराधार है? क्योंकि एक अवस्था से दूसरी अवस्था में जाने पर हमारी वह अस्मिता ही बदल जाती है। आज हमारी अस्मिता का आधार बाहरी दृश्य, ग्राह्य व परिवर्तनशील जगत है; जो कि नश्वर है। उसके साथ तादात्म्य करके हमने अपनी यह अस्मिता बनाई है। जब अस्मिता का आधार ही अस्थायी है, अनित्य है; तो हमारी यह अस्मिता सत्य कैसे हो सकती है!

हमें अपने अस्मिता के धरातल पर नित्य और अनित्य का विवेक करने की आवश्कयता है। शास्त्र प्रमाण व गुरुकृपा से विवेक करके इस तथ्य को देख पाते हैं कि, अपने अहं के दो पहलू है। जिसमें एक अस्थायी है - जो विविध अनुभूतियां, तथा अवस्था परिवर्तन के साथ बदल जाती है। सुषुप्ति अवस्था में तो उसकी अनुभूति का भी अभाव हो जाता है।

अनुभूति के दायरे में विद्यमान विविध अवस्थाएं तथा अपनी सत्ता आदि है। उन सब में परिवर्तन देख

ब्रह्मप्राप्ति का स्वरूप

रहे है। वह दिव्य, सुन्दर है किन्तु सत्य नहीं है। किन्तु इसी अहं का एक दूसरा पहलू है। जो कि समस्त व्यक्त की अनुभूतियां, जाग्रदादि अवस्था रूप परिवर्तनशील में एक अपरिवर्तनीय स्वप्रकाश रूप सत्ता मैं की तरह स्फुरित है। क्षणिक, परिवर्तनशील, ग्राह्य का महत्व खतम होने पर उन व्यक्त पदार्थों से तथा उससे निर्मित क्षुद्र अस्मिता से मुक्त होते है। तथा सूत्रवत् स्थायी तत्व जो है वह हम है – उसका महत्व तथा संज्ञान होता है। उस व्यक्त आयाम के प्रति महत्वबुद्धि गौण हो जाएं तब सूर्य की तरह स्वप्रकाश हमारी चिन्मयी, प्रिय सत्ता दीख सकती है।

अपनी तीनों अवस्थाओं में से जाग्रत में ही अनुभूति का सामर्थ्य होने की वजह से इसी अवस्था में उसके सजग, सचेत होते है कि हम चिन्मयी सत्ता हर अनुभूति, अवस्था में, अबाधित, कालातीत सूत्रवत् विराजमान है। उसीका जगत में अस्ति, भाति और प्रिय की तरह निश्चय हो सकता है। प्रारम्भ में यह ज्ञान बौद्धिक होता है और शास्त्रप्रमाण से ठीक से समझते जाते है तो परिवर्तनशील में अपरिवर्तनीय, सूत्रवत् स्थायी सत्ता अनुभव होती है। नित्य अनित्य के विवेक से अपरोक्षतः अपनी चेतन सत्ता को जान लेना ही उसकी प्राप्ति है।

यद्यपि शास्त्र का गुरुमुख से श्रवण के समय ही इसका अपरोक्षतः भान हो जाता है अर्थात् प्राप्त हो जाती है। शास्त्र प्रदत्त विविध लक्षणाओं का आश्रय लेते हुए पुरुषार्थ पूर्वक सूक्ष्म धरातल पर चिन्मयी अधिष्ठान की अवेरनेस भी उत्पन्न करते है। उसका महत्व, आशय शनैः शनैः समझ में आता है।

समस्त व्यक्त की अनित्यता, नश्वरता का निश्चय करने के द्वारा उसका महत्व गौण होता है तब उस पर आधारित अस्मिता को भी क्षणिक, स्वप्नवत देख पाते है। नित्य और अनित्य का विवेक करते हुए उसे आत्मसात करते है। इस प्रकार गुरुकृपा से अपरोक्ष, प्रामाणिक ज्ञान में दृढ़निश्चय कि हम मूलरूप से कालातीत चिन्मयी ब्रह्मस्वरूप सत्ता है; यही प्राप्ति का स्वरूप है।

किन्तु विपरीत धारणा की दृढ़ता की वजह से वह टिकता नहीं है। जब इस ज्ञान की वजह से उसमें महत्वबुद्धि से भावना हो जाएं, उससे अपने अन्दर धन्यता हो जाएं – तब ही यह ज्ञान अबाधित होता है। इस ज्ञान में ऐसा दृढ़ निश्चय हो जाए कि वह मन में भावना उत्पन्न करें। जिसके प्रति महत्वबुद्धि तथा औचित्य का निश्चय होकर उसमें सहज ही भावना प्रवाहित होती है। मन उन-उन विषय में सहज रमता रहता है। उसी प्रकार अपनी ब्रह्मस्वरूपता में सहज रूप से रमने लगे। उसीसे विश्रान्ति, प्रशान्ति, धन्यता होने लगें। अपने उस होने मात्र में ही ऐसी संतुष्टि व धन्यता है कि हमें किसी अन्य से संतुष्टि की अपेक्षा न रहे, ऐसे धन्य कृतात्मा हो जाए। हमारी संतुष्टि हम क्या है, उससे नहीं किन्तु अपने होनेमात्र में हो; तब हमने ब्रह्म को प्राप्त कर लिया और हम मुक्त हो गएं।

मेरा दिल समन्दर है,

जिसमें वक्त की लहरें उठती है

बीते वक्त को बहा ले जाती है।

मैं हर पलको जीने का मजा जानता हूं।

इसलिए मैं सब को अपने में समाता हूं।

मेरा दिल समन्दर है,

इसमें बडी गहराईयां है।

इसलिए हर खयाल एक नया मोती लाता है।

जिन्दगी को और भी खूबसूरत बनाता है।
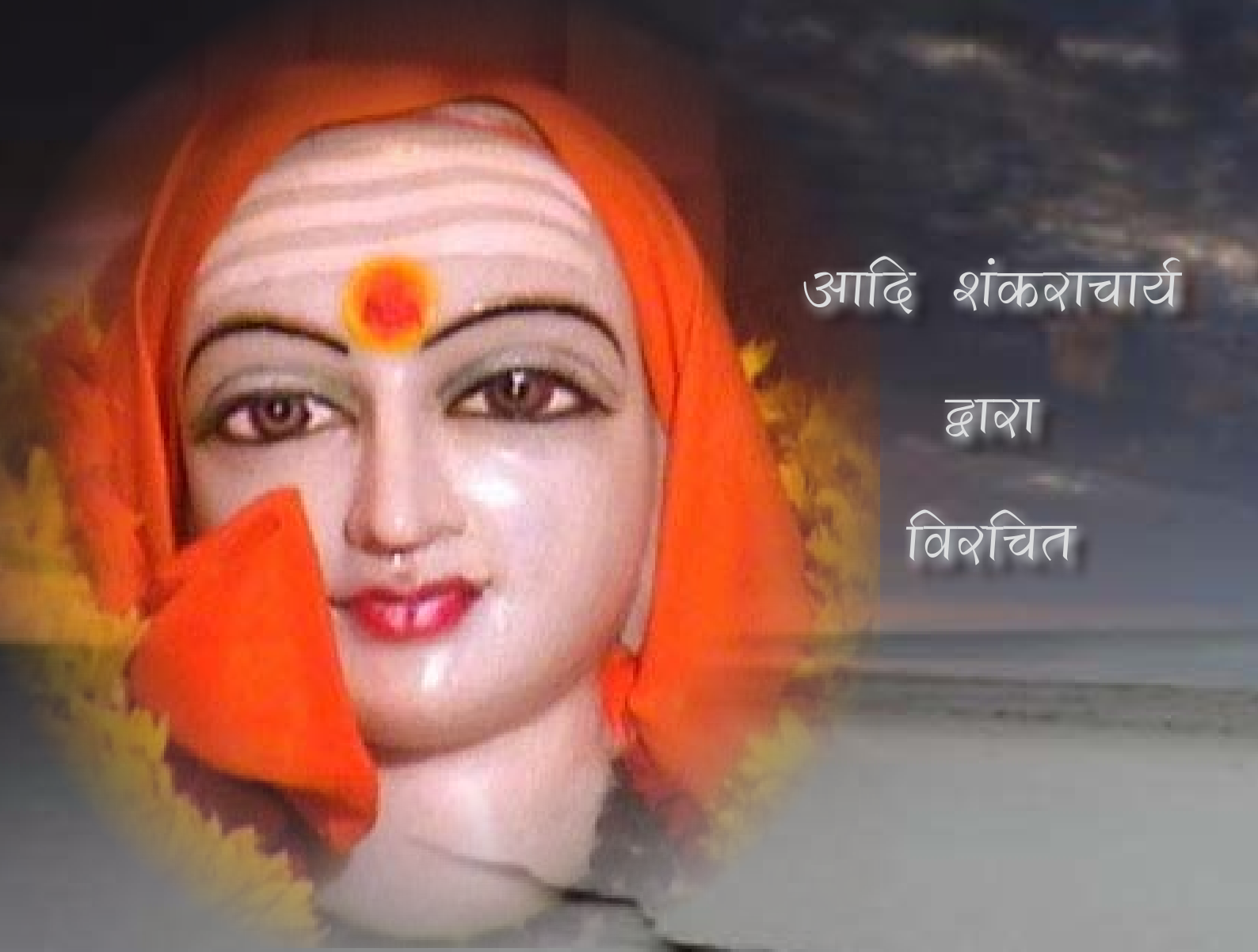
आदि शंकराचार्य
द्वारा
विरचित

दृग्दृश्यविवेक

श्रुतिस्मृतिपुराणानां आलयं करुणालयम्।
नमामि भगवत्पादं शंकरं लोकशंकरम्।।

स्वानुभूतिरसावेशाद्
दृश्यशब्दावुपेक्ष्य तु।
निर्विकल्पस्समाधिस्यात्
निवातस्थित दीपवत्।।

दृश्य और शब्द की उपेक्षा कर स्वानुभूति के रसावेश से निवातस्थान में स्थित दीप के समान निर्विकल्प समाधि स्थिर होती है।

आचार्य ने पूर्व श्लोकों में हृदि अर्थात् अन्तःसमाधि की चर्चा करते हुए सविकल्प समाधि के अन्तर्गत दृश्यानुविद्ध और शब्दानुविद्ध के बारे में बताया। दृश्यानुविद्ध समाधि अर्थात् दृश्य से सम्बद्ध। ध्यान के क्षणों में दृष्टा–दृश्य का विवेक करते हुए दृश्य के माध्यम से साक्षी की ओर ध्यान मोड़ा गया। दृश्य के साक्षी बनने पर हमने क्या दृश्य देखा – वह गौण होकर कौन देख रहा है, उस साक्षी का महत्व होता है। साक्षी निरपेक्ष दृष्टा है। जब निरपेक्ष दृष्टा बनकर स्थित होते है, तब साक्षी के स्वरूप पर गहराई से विचार होता है।

गहराई से विचार के लिए शब्दानुविद्ध अर्थात् शास्त्र प्रतिपादित – असंग, सच्चिदानन्द आदि लक्षणा रूप शब्दों का आश्रय लेकर गहराई से विचार किया जाता है। दृश्यानुविद्ध में हमारा ध्यान दृष्टा की तरफ मोडता है, और शब्दानुविद्व में समाधि इसके बारे में प्रामाणिक बोध उत्पन्न करता है। इन समस्त शास्त्रोक्त लक्षणाओं पर गहराई से विचार करके अपने आपको यह ही अपरोक्षतः जानकर, उसमें चित्त को समाहित कर लेना – यह शब्दानुविद्ध सविकल्प समाधि है।

इस प्रकार अन्तःसमाधि के सविकल्प और निर्विकल्प समाधि रूप भेद में से सविकल्प समाधि विषयक बताया। अब आचार्य यहां निर्विकल्प समाधि के बारे में बता रहे हैं। समाधि मन का समाहित होना है। अन्तःकरण जब अपनी समस्त औपाधिक विशिष्टताओं के प्रति महत्व और आसक्ति को बाधित करने के उपरान्त शुद्ध स्वस्वरूप में समाहित हो जाता है, तो उसे ही समाधि कहा जाता है। समाधि के अभ्यास से पहले तो अपने अन्दर विद्यमान संशय, विपर्यय को दूर करते है और निश्चय से युक्त होते है। जिसे सुना है, उन लक्षणादि पर विचार के द्वारा लक्षित सत्य जो हमारी चिन्मयी सत्ता है, उसका संज्ञान उत्पन्न करते हैं। यहां पर एक विचारक स्वयं पर विचार करके अपने स्वस्वरूप के निश्चय से युक्त होता है। उपहित धरातल पर जो विचारक है, वह ही अनुपहित धरातल पर अखण्ड, चिन्मयी सत्ता है – यह जानते हैं। अपने आपको ऐसी पूर्ण, अखण्ड सच्चिदानन्द स्वरूप सत्ता देख लेना ही अखण्डाकार वृत्ति है। जब तक यह वृत्ति सहज नहीं हो जाती तब तक उसका संकल्प, चेष्टापूर्वक, पूरे भाव के साथ अभ्यास करते रहना चाहिए। मन बार–बार आदतवशात् संस्कारों के अधीन होकर बहने

दृग्दृश्य विवेक

की सम्भावना रखता है। उस पर और गहराई से विचार करके उसे निपटना करना चाहिए। दूसरी ओर मन में तमोगुण का साम्राज्य होकर निद्रा तुल्य स्तब्धता हो सकती है। अतः अपने दिनभर के व्यवहार, आहार, विहार में संतुलन स्थापित करते हुए उसे नियंत्रित किया जाना चाहिए। सतत अभ्यासपूर्वक उसमें रमते रहना चाहिए। जब तक मन में अन्य चीजों के प्रति भावना बनी हुई है, तब तक अभ्यास सार्थक नहीं होता है। इसलिए लक्ष्य के प्रति अत्यन्त तीव्र भावना होनी चाहिए। वह हमारी प्रार्थना का विषय बन जाए। इस प्रकार अभ्यास करते रहने से इसमें एक विशेष रस की अनुभूति होती है।

दीर्घ काल तक तीव्रता से भावपूर्वक अभ्यास करने पर, रस की अत्यन्त अनुभूति होते हुए वह सहज होने लगती है। शनैः शनैः विचारक की चेष्टा अनावश्यक होने लगती है। अर्थात् हम ध्यान वा विचार कर रहे है, उसकी संज्ञान का भी अभाव हो जाता है। समस्त विचार की प्रक्रिया शान्त हो जाती है। अब विचार की अनावश्यकता हो गई, और सभी विकल्पों से रहित एक अखण्ड निर्विकल्प सत्ता मात्र विराजमान है। उसमें न हम ध्याता है और इसलिए न कोई ध्येय है। ध्याता-ध्येय के विकल्प की समाप्ति निर्विकल्प में पर्यवसान है। वहां न कोई प्रयास है, न कोई प्रयास करनेवाला है। उस अवस्था को निर्विकल्प समाधि कहा।

गीता में भगवान ने उसके लिए बहुत सुन्दर दृष्टान्त दिया है कि जिस प्रकार वातरहित स्थान में विराजमान दीपक की लो चंचलतारहित, अत्यन्त स्थिर होती है। वैसे ही अन्तःकरण की स्थिति है। आचार्य भी उसी दृष्टान्त को देते हुए समझाते हैं। यह अवस्था सविकल्प के अभ्यास के प्रसादरूप से प्राप्त होती है, न कि किसी अन्य विशिष्ट प्रयास से। सविकल्प में बौद्धिक प्रयास के साथ-साथ उसमें हृदय अर्थात् तीव्र भावना का भी सम्मिलित होना परं आवश्यक है। ऐसे समन्वित अन्तःकरण से भावना की तीव्रता के साथ विचार करने पर ही उसमें सहज रूप से जग जाते है।

निर्विकल्प समाधि में हम सचेत मन से जाते है, किन्तु वहां जाने के उपरान्त समस्त भेद से रहित एक अखण्ड सत्तामात्र विराजमान होते हैं। भगवान उसके बारे में बातते हैं कि स निश्चयेन योक्तव्यः। ऐसी निर्विकल्प समाधि को अवश्य प्राप्त करना चाहिए। जो कि सविकल्प के प्रसाद रूप से प्राप्त है।

गीता अध्याय : 3

कर्मयोग

गीता के तीसरे अध्याय का नाम कर्मयोग है। इस अध्याय का आरम्भ अर्जुन के प्रश्न से होता है। अर्जुन स्थितप्रज्ञ के लक्षण सुनकर इस लक्ष्य से अत्यन्त प्रभावित हुआ, तथा उसे ज्ञान की महिमा भी समझ में आई कि ज्ञान से ही मुक्ति की प्राप्ति होती है। किन्तु दूसरी और स्पष्टरूप से भगवान ने यह भी बताया कि, 'कर्मण्येवाधिकारस्ते'! 'तुम्हारा अधिकार कर्म में ही है। यह सुनकर अर्जुन के मन में संशय हुआ कि यदि ज्ञान ही श्रेष्ठ है, तो हमें कर्म में क्यों प्रेरित कर रहे हैं? और वो भी ऐसे हिंसा रूप घोर कर्म में। इन दोनों बातों में विरोधाभास लग रहा है, उससे हम मोहित हो रहे हैं। कृपया आप उसमें से स्पष्ट रूप से एक वस्तु बताइएं।

इसके उत्तर में भगवान अर्जुन को न केवल कर्म का महत्व समझाते हैं किन्तु साथ ही कर्म की वह कला बताते हैं कि जिससे यज्ञभाव का समावेश होकर कर्म कर्मयोग बन जाता है। उससे कर्मबन्धात् प्रमुच्यते।

अर्थात् कर्म बन्धनकारी नहीं रहते है।

जीवन को दो भागों में विभाजित किया जाना चाहिए। एक हमें अन्ततः कुछ जानना, ज्ञान प्राप्त करना है और आरम्भ में कर्म करना है। यह ज्ञान और कर्म की दो निष्ठाएं हमने वेदों में बताई है। वेद ईश्वर की वाणी है। वेद ही प्रमाण है। भगवान के इस कथन से मानों अपनी भगवत्ता प्रकट् कर दी।

पूरे जीवन में दो निष्ठा अर्थात् कर्तव्यता होती है। १. ज्ञानयोगेन सांख्यानां। अर्थात् ज्ञानयोग के द्वारा जो सांख्य अर्थात् ज्ञान के अधिकारी, गम्भीर चिन्तन के अधिकारी हो गए है; उसके लिए। जिसे कर्म अब बोझारूप नहीं लगता है। उसका मन शान्त है। उसे ज्ञान के द्वारा जीवन का रहस्य बताते हैं। उनके जीवन का परं लक्ष्य जीवन के रहस्यों को ही जानना है। दूसरा योग का अधिकारी। जहां जीवन की प्रेरणा मन को शान्त करना है, जीवन के उतार चडाव में अपने मन को शान्त व समत्व से युक्त बनाता है। वे जगे रहकर प्रतिक्रियाविहीन होते है। कर्मक्षेत्र की चुनौति अपने अन्दर सामर्थ्य जगाना, विचारशीलता, धर्मपालन, ईश्वर के निमित्त बनकर जीना है। ऐसे गुणों से युक्त को योगी कहा। कर्म का प्रयोजन भी यही होता है। जो इन सामर्थ्यों से विहीन है, वह कर्म का अधिकारी है। जिसने यह सिद्ध कर लिया वही सांख्य का अधिकारी है।

बगैर कर्म के नैष्कर्म्यरूप मोक्ष की सिद्धि नहीं होती है तथा जीवन भी सम्भव नहीं होता है। मन के अनेकों इच्छा, वासनाएं है और कर्म त्याग कर बैठना यह मिथ्याचार है। अपने मन की इच्छा का दमन नहीं करते हुए उसे सुन्दर भावना, उत्साह और समग्रता से प्रभु की आज्ञा समझकर करें। जो भी प्रकृति है या वर्ण और आश्रम के अनुरूप कर्म करना ही चाहिए।

प्रत्येक कर्म में यज्ञभाव का समावेश हो अर्थात् उसे ईश्वर की प्रसन्नता के लिए, किसी भी महान के लिए, उनकी अर्चना के लिए करते जाएं। उसे भगवच्चरणों में पुष्पवत् अर्पित करें। जब हम उनके लिए कर्म करते है, तो फल अवश्य प्राप्त होता है। किन्तु साथ ही मन शान्त, निश्चिंत और बोझों से मुक्त होता जाता है।

ईश्वर ने जगत की पूरी व्यवस्थाओं को दिव्य शक्तियों के हाथ में सोपा हुआ है। उसे ही देवता कहा गया है। उन देवताओं की सतत कृपा बरस रही है। उनकी प्रसन्नता के लिए कर्म करों। भगवान ने हमे यह यज्ञ का सामर्थ्य दिया है। यज्ञ करनेवाला संवेदना से युक्त देख रहा है कि हम पर कोई कृपा बरसा रहा है। उनकी खुशी के लिए हमें करना है। जो इसके प्रति सचेत नहीं है और सतही जीवन जीता है, वह अपने उपर ही सब बोजे से युक्त होता है; स्वकेन्द्रिता से प्रेरित जीवन जीता है। यह यज्ञभाव से विपरीत व्यवहार है। वही कर्म पीड़ा देता है – जो स्वार्थ, चिन्ता आसक्ति से युक्त होकर होते है। अतः हमारा कर्म देवताओं को ही प्रसन्न करने के लिए हो। यज्ञभाव आशीर्वाद है, वह कामधेनू तुल्य है, उसका समावेश कर्म में करना चाहिए।

पूरे जगत में, समस्त प्रकृति आदि में यह सहज रूप से समाविष्ट है। वर्षा आती है, तो बादल अपना सब कुछ उधेल देते है। वृक्षादि अपना सब कुछ दे देते है। यज्ञभाव में निस्वार्थता, समर्पण होता है। कर्म में यज्ञ का सामर्थ्य है, इसलिए कर्म को त्यागना नहीं चाहिए। जो इस यज्ञकर्म का आश्रय नहीं लेता है तो उसका जीवन व्यर्थ है। जब तक अपने अन्दर पूर्ण संतुष्ट न हो जाएं तब तक उसे कर्तव्य की तरह अवश्य करना चाहिए। किन्तु जो अपने अन्दर तृप्त है, उसके लिए कर्तव्य नहीं है। उसके द्वारा दक्षतापूर्वक, सहज रूप से, प्रेम से, यज्ञभाव से कर्म होता है।

कर्मफलासक्ति से युक्त होकर कर्म करने से कर्म में दक्षता नहीं आ पाती है। कर्मफलासक्ति त्यागने का अभिप्राय अपना ध्यान कर्म के फल अर्थात् भविष्य से मुक्त करके वर्तमान में कर्म में लगाएं। भविष्य की चिन्ता से मुक्त होकर जगन्नियन्ता तथा संचालक शक्तियों पर पूर्ण विश्वास से युक्त होकर कर्म करें। उसके प्रसादस्वरूप स्वतः ही अच्छा फल मिलेगा। अतः आसक्तिरहित होकर कर्म करें। आसक्ति कमजोर और पराधीन बनाती है। इस प्रकार अनासक्त तरीके से,

यज्ञभाव से युक्त होकर राजा जनकादि ने कर्म किएं थे और महान ज्ञानरूप सिद्धि को प्राप्त किया। ऐसे महान आदर्श को समक्ष रखकर कर्म करों। श्रेष्ठलोगों के आचरण का ही अन्य अनुसरण करते है। तुम भी किसी के आदर्शरूप हो। अतः अपना सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करों।

हमें ही देख लो कि यदि हम अपने अन्दर संतुष्ट होने से हमारी कोई कर्तव्यता नहीं है। फिर भी यदि हम कार्य नहीं करेंगे तो जगत का संचालन ही सम्भव नहीं होता है, जगत समाप्त हो जाएगा। कर्म हमारी मजबुरी नहीं, सौभाग्य है। कर्म से मन रूप दर्पण को शुद्ध कर सकते हैं। तत्त्वज्ञ कर्म के रहस्य को जानते है और अत्यन्त उत्साह से अपनी प्रकृति के अनुरूप कर्म करते हैं। यही कर्म के निमित्त होते है। आत्मा सब में असंग होती है। कर्म की प्रेरणा को न रोके, किन्तु उसे उत्साहपूर्वक करें। प्रकृति के द्वारा ही गुण कर्म का निर्धारण होता है। गुण से अभिप्राय सत्व, सजस् और तमो तथा कर्म से अभिप्राय पाप और पुण्य है। वही कर्म करवाते है। कर्म की प्रेरणाएं उनसे होती है, अतः उसे अच्छा बनाएं। उसे चुनौति की तरह लेना चाहिए। किसी भी परिस्थिति में अपनी चिन्ता न करते हुए भगवान की आराधना की तरह प्रत्येक कर्म करें। अध्यात्म लक्ष्य को अपने हृदय में रखें कि हमें अपने अन्दर ही जगना है। उसे समक्ष रखकर कर्म को प्रेम से करें। जो इस तरह कर्म करता है, उसका निश्चित रूप से कल्याण होता है। अन्यथा तनाव, चिन्ता, क्लेश, अशान्ति से ग्रस्त होकर सतत संतप्त होता रहेगा। हर व्यक्ति की अपनी एक प्रकृति होती है, वह अपने अन्दर अन्तः प्रेरणा की तरह स्थित होती है। उसे ही स्वधर्म कहा। उसे भगवान की आज्ञा समझना चाहिए। उसे हमें पहचाानना आना चाहिए। ज्ञानवान भी अपनी प्रकृति अनुरूप कार्य करता है। अपनी प्रकृति अर्थात् स्वधर्म को जगत में सेवा, अन्य की प्रसन्नता के लिए प्रयोग करना चाहिए। भगवान कहते है – स्वधर्मे निधनं श्रेयः। यदि उससे हमें बाहरी उपलब्धियां आदि न भी हो तो भी स्वधर्म को त्यागना नहीं चाहिए। और परधर्म का आश्रय नहीं लेना चाहिए। क्योंकि परधर्म सदैव फलाकांक्षा से प्रेरित होता है।

भगवान के वचनों से अर्जुन अत्यन्त प्रभावित और प्रेरित हो गया। किन्तु साथ ही अपनी असमर्थता देख रहा है। जैसे हर व्यक्ति किसी महान लक्ष्य से प्रेरित हो, धर्म का अनुसरण करना चाहता है किन्तु उस पर टिक नहीं पाता है। कोई अज्ञात शक्ति, विपरीत विचार उसे गलत मार्ग पर चलने को विवश कर देती है, उसकी वजह से उसमें बह जाते है। अर्जुन पूछता है कि वह क्या कारण है कि जिसकी वजह से मनुष्य पापकर्म का आश्रय लेता है? वह क्यों अपनी प्रेरणाओं के साथ समजोता कर लेता है।

भगवान बताते है कि वह शक्ति कोई बाहर

नहीं होती है। किन्तु अपने ही मन के रजोगुण अर्थात् स्वकेन्द्रिता से उद्भूत काम और क्रोध है। अपने स्वार्थ प्रेरित संकल्प किए है, वे ही वासना, कामना के रूप में प्रबल होकर हमें संचालित करते है। हम ही ने उसे संकल्प, प्रार्थना आदि से पुष्ट किया है। कामना एक महाशता है। उसे कितना भी पूर्ति करते जाएं तो भी कभी तृप्ति नहीं होती। यह महाशना है। काम का आवेग, अपने वशीभूत करके मनुष्य को अनेकों पाप करवाती है। इसलिए महापाप्मा है। उसे अपना शत्रु जानें। वो जैसे गर्भ को जिल्ली ढक देती है, जैसे दर्पण को रज तथा जैसे अग्नि को धूंआ आवृत्त कर देता है, वैसे ही कामना हमारे विवेक को आवृत्त कर देती है। ज्ञानवान उसे अपना शत्रु जानते है। कामना की समाप्ति विवेक से ही होती है। उसकी पूर्ति करते रहने से तो वह सतत बढ़ती जाती है कि जिस प्रकार अग्नि बुझाने के लिए उसमें घी डालने से और भी प्रज्ज्वलित होती जाती है।

कामना का रहने का स्थान इन्द्रिय, मन और बुद्धि है। वह इन विविध धरातल पर अभिव्यक्त होती है। उसे विवेक ही हेण्डल किया जाना चाहिए। उसके लिए सब से पहले कामना के अस्तित्व तथा दोष को देखते हुए उसकी निवृत्ति की तीव्र इच्छा होनी चाहिए। उसके उपरान्त उसका दोष देखते हुए पहले इन्द्रिय पर निग्रह करना आवश्यक है। संकल्पूर्वक इन्द्रियों को अपने अधीन करने की आदत डालें। हमारा संकल्प ही पुरानी आदतों पर हावि होना चाहिए। संकल्प के पीछे बुद्धि के निश्चय होते है। इसलिए बुद्धि से मन पर विजय होती है। मन से इन्द्रियों पर और इन्द्रियों से अपने व्यवहार पर विजय होती है। इस प्रकार तीनों को नियंत्रित करें। बुद्धि को प्रामाणिक ज्ञान से सुशिक्षित करके प्रबुद्ध बनाएं। नित्य अनित्य विवेक करने के द्वारा नित्य के प्राप्ति की तीव्र इच्छा हो और अनित्य की अनित्यता व दोष का निश्चय करके उससे मुक्त हुआ जाता है। पूर्णतः कामना की निवृत्ति मन और बुद्धि से परे अपनी पूर्ण स्वरूपता के साक्षात्कार से ही होती है। अतः अर्जुन् अपने विवेक का प्रयोग करते हुए प्रयासपूर्वक इस कामनारूप महाशत्रु पर विजय प्राप्त करों।
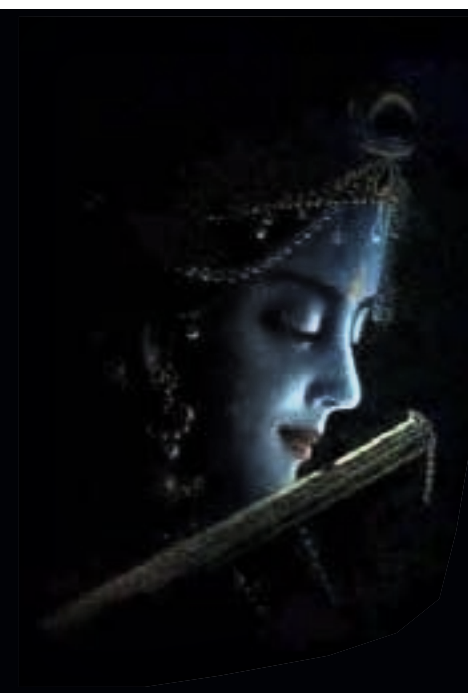
गीता अध्याय : ३ (कर्मयोग)

श्लोक संख्या : ४३

अर्जुन द्वारा : ३

भगवान द्वारा : ४०

विभूति दर्शन

(श्री रामचरित मानस पर आधारित)

श्री लक्ष्मण चरित्र

—०८—

बन्दउं लछिमन पद जल जाता। सीतल सुभग भगत सुखदाता॥
रघुपति कीरति बिमल पताका। दण्ड समान भयउ जस जाका॥

श्री लक्ष्मण चरित्र

जनकपुर की यात्रा में नगरदर्शन में उनकी भूमिका एक ऐसे किशोर की है जिसके अन्त:करण में मिथिलापुरी देखने की उत्कृष्ट आकांक्षा है। पर अपने अनुशासनप्रिय स्वभाव के कारण कुछ कहने में संकोच का अनुभव करते हैं। किन्तु राघव उनकी आकांक्षा पूर्ति के लिए महर्षि से आदेश मांग लेते हैं। महर्षि से उन्होंने यही कहा कि लक्ष्मण नगर देखना चाहते हैं: 'नाथ लखन पुर देखन चहही।' इससे ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे वे स्वयं को बचाने की चेष्टा कर रहे हैं। यह उनके स्वभाव के अनुकुल प्रतीत नहीं होता। यदि वे महर्षि से कहते कि 'मैं नगर देखना चाहता हूं' तो यह उनके स्वभाव और शील के अधिक अनुरूप होता। नगरदर्शन की लालसा को वे लक्ष्मण में आरोपित करते हैं। यह लक्ष्मण के प्रति उनके अपनत्व और प्रगाढ़ विश्वास का परिचायक है।

नगरदर्शन तो एक साधारण सी घटना थी। इसके बाद भी अनेक ऐसे अवसर आए, जब प्रभु ने लक्ष्मण को अयश का विष पिलाया जिसे लक्ष्मण मुस्कराते हुए पी गएं। शिव के कण्ठ की नीलिमा की भांति उनके कलंक की श्यामता भी सहृदयजनों के अन्त:करण में श्रद्धा का सृजन करती है। धनुर्यज्ञ के मण्डप में राजा जनक की आलोचना का कठोर कार्य के द्वारा वे श्रीराम के शौर्य को ही उजागर करते हैं, साथ ही लोगों की दृष्टि में उनके शील, धैर्य और गाम्भीर्य की महिमा प्रतिष्ठापित कर देते हैं। लक्ष्मण की तेजस्विता भरी वाणी सुनकर नगरवासियों को लगा होगा कि बड़े भाई में कैसी गम्भीरता है! छोटा भाई शौर्यसम्पन्न होते हुए भी असहिष्णु है। इस प्रकार असहिष्णुता का अयश लेकर राघवेन्द्र की कीर्तिपताका को विश्वविश्रुत बना देना – समग्ररूप से समर्पित और लोकेषणाशून्य लक्ष्मण के लिए ही सम्भव था। आगे चलकर लक्ष्मण-परशुराम का संवाद हो या शूर्पणखा का विरूपीकरण या विदेहजा की अग्निपरीक्षा; लक्ष्मण अयश लेने के लिए सर्वदा सन्नद्ध रहते हैं। प्रभु आत्मरक्षा के लिए उन्हें आगे कर देने में किसी संकोच का अनुभव नहीं करते। नगरदर्शन के समय लक्ष्मण के नाम को आगे कर देने का क्रम प्रारम्भ हुआ, उसी नन्हें से बीज में लक्ष्मण की महानता का वटवृक्ष समाया हुआ था। रामभद्र के यह कहने पर भी कि लक्ष्मण नगर देखना चाहते है, महर्षि ने इसे इसी अर्थ में नहीं लिया। उन्हें लक्ष्मण के नगरदर्शन की लालसा के पीछे उनका जीवनदर्शन दीखाई देता है। उन्हें लगा कि लक्ष्मण मिथिलाभ्रमण के बहाने नगरवासियों को राम के सौन्दर्य का साक्षात्कार कराना चाहते हैं। तात्त्विक अर्थो में वे जीवों के आचार्य पद की भूमिका का निर्वाह कर रहे थे। वेदान्तनिष्ठ मिथिलापुरवासियों को लक्ष्मण सगुण साकाररूप का दर्शन कराकर उनकी अपूर्ण विचारधारणा को पूर्णता तक पहुंचाना चाहते हैं। ऐसा लगता है कि आज तक जनकपुरवासियों की दृष्टि में नेत्र का कोई तात्विक प्रयोजन नहीं था। पर राघवेन्द्र के सौन्दर्य का साक्षात्कार कर लेने पर उन्हें आखों की सार्थकता की अनुभूति होगी। इसीलिए महर्षि राघवेन्द्र को नगर परिभ्रमण का आदेश देते हुए 'करहु सुफल नयन सुन्दर बदन दिखाई' के द्वारा लक्ष्मण के उद्देश्य का स्पष्टीकरण कर देते हैं।

श्रद्धा ही ज्ञान की जननी है।

शास्त्र और गुरु में विश्वास ही श्रद्धा है।

वेदान्तवाक्यों में श्रद्धा का अभिप्राय
- अपनी पूर्ण स्वरूपता की श्रद्धा है।

गुरु के प्रति श्रद्धा का अभिप्राय
- गुरु को साक्षात्ब्रह्मस्वरूप जानना है।

श्रद्धा में विश्वास के साथ
बुद्धि की जागृति होना परं आवश्यक है।

विभूति दर्शन

—१३—

ऋषीकेश
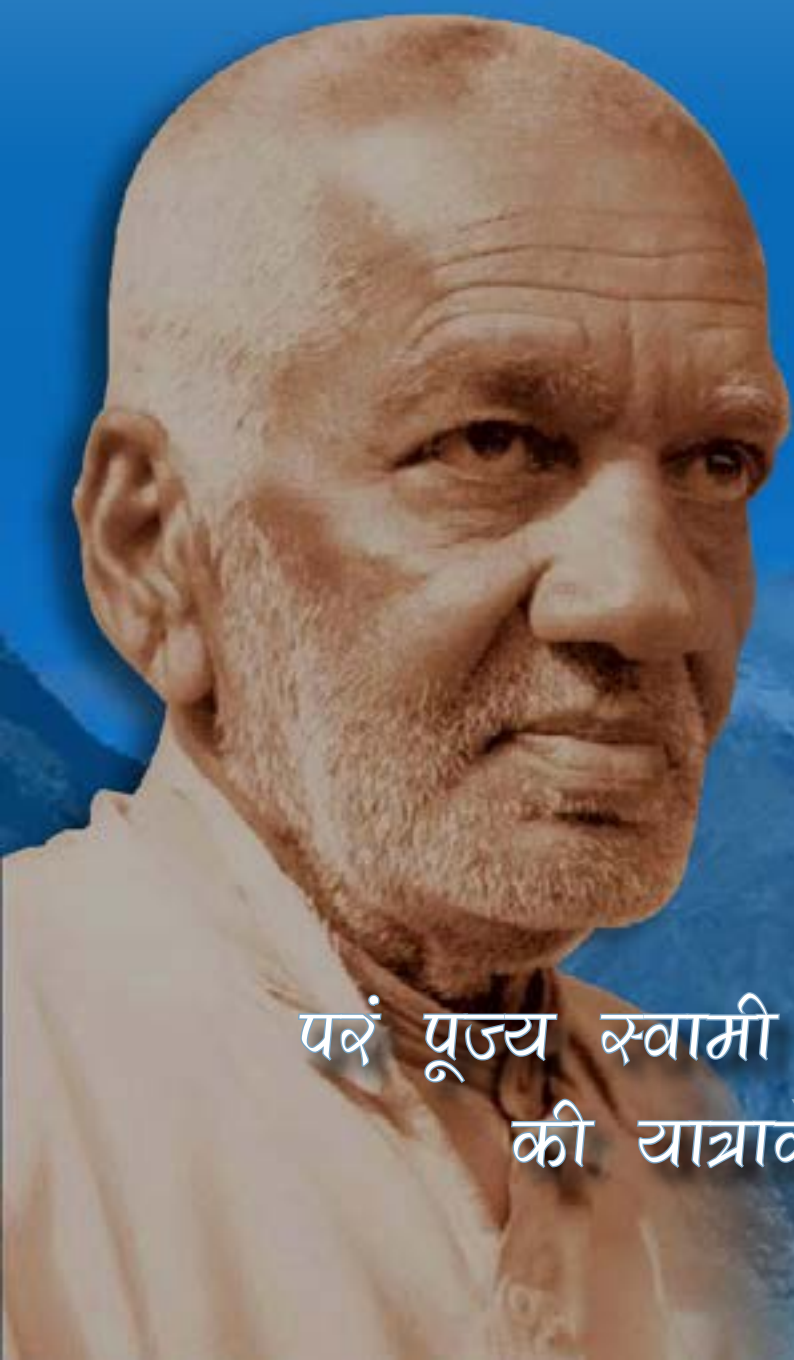
परं पूज्य स्वामी तपावेन महाराज
की यात्राके संस्मरण
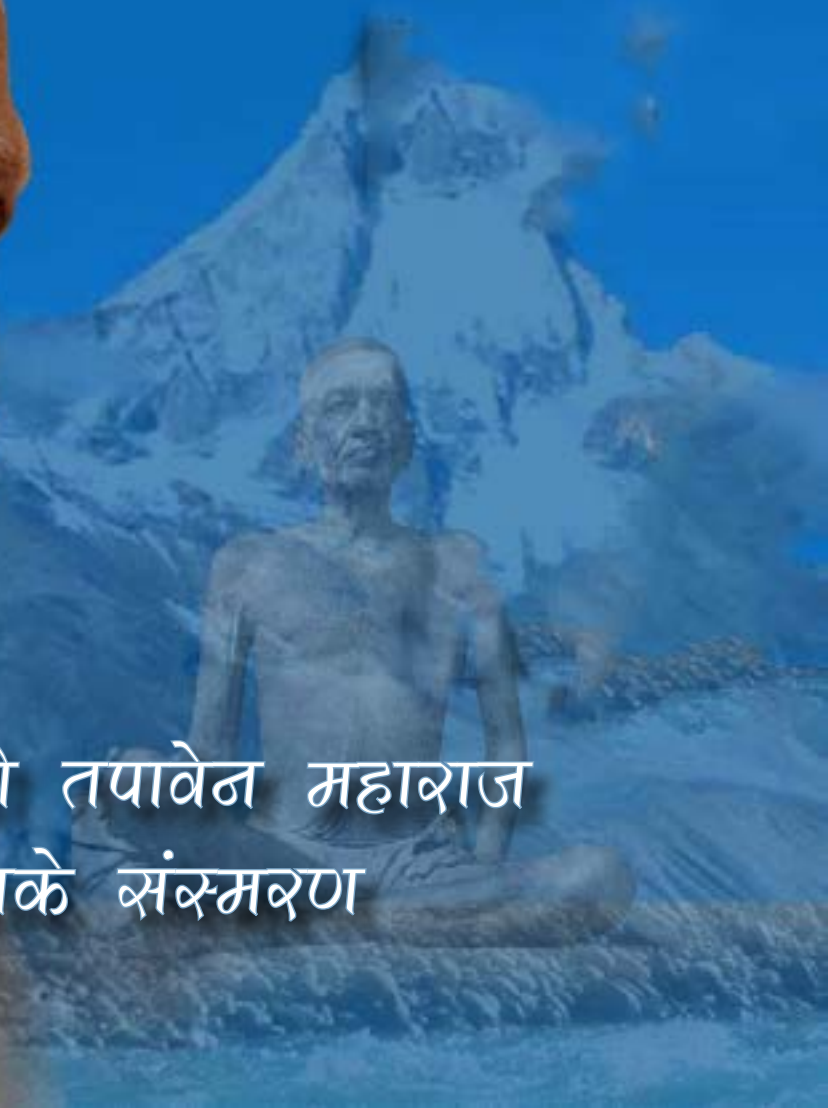
जीवन्मुक्त – १३

विश्वेश्वर मंदिर से लगभग दो मील उत्तर की ओर जाने पर विशाल तथा सुन्दर धान का एक खेत दिखायी पड़ता है। वहां से कुछ और उपर की ओर जाने पर काशी क्षेत्र की उत्तरी सीमा 'असी' नामक एक छोटी नदी तथा भागीरथी का संगम है। वहां से उत्तरी दिशा में वल्ली गुल्मादियों से निबिड़, वृक्षराजियों से विराजित एवं निर्झराम्बु निषिक्त कमनीय वनों से अलंकृत पर्वतों की ताराइयां भी प्राप्त होती है। जब जब मैं उत्तरकाशी में रहा, वहां के खेत और असी किनारे का रमणीय वन चित्तसमाधि के साधन बन जाते थे। उन स्थानों पर बैठकर मैं चिन्तन सरणी में बहते हुए अलौकिक शान्ति का अनुभव किया करता था। चूंकि उत्तरकाशी में गंगातट की निम्न भूमि भी लगभग पांच हजार फुट की उंचाई पर है, इसलिए हिमालय के निम्न स्थानों के समान गर्मी में प्रचंड ताप या वर्षा में मलेरिया आदि का अनर्थ यहां नही होता। वर्षा में पहाड़ की तराइयों से नीचे की ओर उतर कर बहुत ही निकट चलनेवाले काले बादलों के समूह प्रतिदिन बरसते हुए मन को उन्मेष से भर देते हैं। यहां के जाड़े के बारे में तो इतना ही कहना पर्याप्त है कि वह सहृदयों के हृदयों को आह्लादित करनेवाला है। बरसात के शुरु होने पर हिमपात के कारण धवल बन जानेवाली पर्वत श्रेणियां तथा शीत की अधिकता से मनुष्यों का आवागमन ही नहीं, पक्षियों की आवाज़ को भी रोकने वाली गम्भीर प्रशांति कितना आनन्द व आश्चर्य पैदा कर देती हैं!
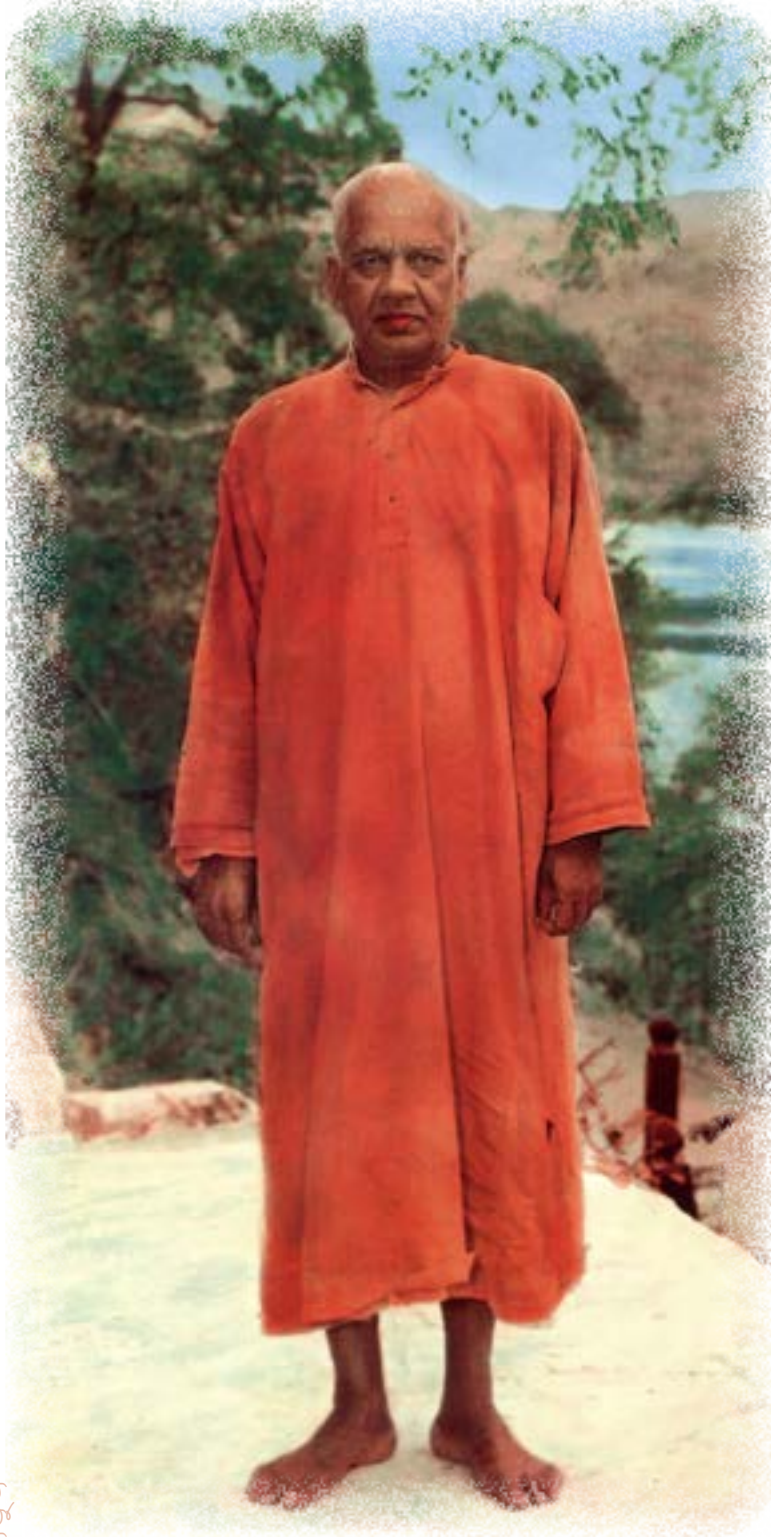
वारणावत पर्वत की चढ़ाई को बड़ा पुण्य मानकर पुराणों ने प्रशंसा की है। उस पर एक कदम आगे बढ़ने से एक यज्ञ करने का फल मिल जाता है। 'वाराहट' नामक तराई के ग्राम से लगभग चार मील उपर की ओर चढ़ जाने पर हम वारणावत गिरि के उंचे शिखर पर पहुंच जाते है। सौम्य काशी क्षेत्र के

जीवन्मुक्त – १३

अन्तर्गत श्रीविश्वनाथ के मंदिर की स्थिति से अनुगृहीत एक सुन्दर ग्राम है 'वाराहट'। कठ़िन होने पर भी कभी कभी तराई से उंची चढ़ाई के उस गिरिशिखर की ओर चढ़ जाना मेरे लिए एक स्फूर्तिदायक तथा विनोदमय तपस्या कर्म था। एक या डेढ़ घंटे तक पर्वतारोहण करने में कुछ कष्ट तो होता है, फिर भी गिरिकूट में पहुंच जाने पर कितने ही पवित्र तथा सुन्दर दर्शन प्राप्त होते है। गिरिशिखर से हिमगिरि की मंजुल और मनोहारी प्राकृतिक सुषमा को देखकर हम आनंदपूर्ण हो उठ़ते है। दक्षिण में हिन्दुस्तान के मैदान तक विशालता में फैली हुई हरी भरी पर्वत पंक्तियां, उत्तर में शिलामय शैलराजियां तथा उसके उपर धवल हिम कूट राशियां, बहुत ही शोभाभरी और हृदयाकर्षक दिखायी देती है। वहां हमें हिमालय का घनगंभीर भाव भी दृष्टिगोचर होता है। संक्षेप में सिर्फ इतना ही कह देता हूं कि वारण ागिरि के आरोहणरूपी तपस्या के अनुष्ठान में परमेश्वर प्रसाद के अदृष्टफल के अतिरिक्त प्रकृति सुषमा का पीयूष इच्छानुसार पीकर आनन्दोन्मत्त होने का इष्ट फल यहीं प्राप्त होता है। उत्तरकाशी में पहली बार रहते हुए वहां के गोपालाश्रम के निवासी और 'गुरुवायूरप्पन' तथा रमण महर्षि के भक्त एक केरलीय सन्यासिवर्य से प्रेरणा पाकर मैंने 'श्रीगुरुपवनपुराधीशपंचकम्' नामक जो रचना वहां की थी, उसे यहां प्रस्तुत कर इस अध्याय खण्ड का उपसंहार कर रहा हूँ।

अध्यात्म साधना में गुरु का स्थान अप्रतिम है। व्यावहारिक जगत् में भी मार्गदर्शक के अभाव में यात्री बहुधा भटक जाया करता है।

फिर उस अज्ञात देश की यात्रा का तो कहना ही क्या है, जहां साधक के लिए सब-कुछ अन्जाना है!

पौराणिक गाथा

कूर्म अवतार

एक बार दैवासुर संग्राम में देवताओं ने विजय प्रापत कर ली। उससे देवताओं का तथा देवराज इन्द्र का अभिमान अत्यनत बढ़ गया। गर्व से चूर होकर विजय के उपलक्ष्य में एक विशेष शोभयात्रा नीकाली गई। इस में इन्द्रदेवता अपने ऐरावत हाथी पर सवार थे। उनके समक्ष ऋषि दुर्वासा आएं। राजा इन्द्र ने ऐरावत पर सवार रहते हुए ही उन्हें प्रणाम किया। दुर्वासाजी ने उन्हें प्रसाद स्वरूप महादेवजी के द्वारा प्रदत्त पुष्पमाला भेंट की।

मद के नशे में चूर देवेन्द्र कों किसी के मान-सम्मान का कुछ भान ही नहीं रहा और उन्होंने यह माला ऐरावत के गले में डाल दी। ऐरावत ने उसे जमीन पर डाल दी और पैरों के नीचे कूचल दी। महादेवजी के प्रसादरूप इस माला का अपमान ऋषि दुर्वासा से सहन नहीं हुए और उन्होंने उसी क्षण देवराज इन्द्र को तथा समस्त देवताओं को श्रीविहीन हो जाने का श्राप दे दिया। उसी क्षण वे श्रीविहीन हो गएं। साथ ही असुरों के राजा बलि ने जब यह देखा कि देवता लोग निर्बल हो गए हैं तो उन्होंने देवताओं के साथ युद्ध छिड़कर उनसे अमृत को छिनने लगे।

इसी छिनाझपटी में अमृतकलश भी समुद्र में गिर कर लुप्त हो गया। अपनी श्री, तेज, वीर्य और अमृतादि को पाने के लिए देवताओं ने भगवान विष्णु से प्रार्थना की। तब उन्होंने समुद्रमंथन का सुझाव दिया। उसके लिए देवताओंने असुरों को भी मना लिया। मंथन के लिए मंदराचल की अरणि और वासुकी की रस्सी बनाकर मंथन आरम्भ किया गया। किन्तु इस मंथन से मंदराचल समुद्र में धसने लगा।

यह देखकर करुणानिधान, विश्व के पालयिता भगवान विष्णु ने कछुए का रूप धारण किया और मन्दराचल को अपनी पीठ़ पर टिका दिया। इस तरह जगत के उद्धार हेतु भगवान ने कच्छप अवतार ध ारण किया। मंदराचल के सतत घूमने से उनकी पीठ़ पर उसकी खरोंच के निशान भी पड़ गएं। इसी वजह से आज भी कछुएं की पीठ पर निशान दृश्य होते है। परं कृपालु परमात्मा जगत की रक्षा हेतु ऐसे अनेकों अवतार धारण करते हैं।

Mission & Ashram News

Bringing Love & Light in the lives of all with the Knowledge of Self

आश्रम समाचार

वेदान्त आश्रम परिवार

२५ अप्रैल २०२१

जगना और सोना

आश्रम सत्संग हाल

अन्य समाचार

२१ अप्रैल २०२१
राम नवमी

२५ अप्रैल २०२१

अन्य समाचार

२१ अप्रैल २०२१

राम नवमी

आश्रम समाचार

२१ अप्रैल
२०२१

श्री
रामनवमी

आश्रम समाचार

हनुमान जयन्ति

२७ अप्रैल

पूजा और आरती

ओम् श्री हनुमते नमः

आश्रम समाचार

हनुमान जयन्ति

२७ अप्रैल
२०२१

आरती और
प्रसाद

ओम् श्री हनुमते नमः

आश्रम समाचार

संन्यास दीक्षा दिन - ३० अप्रैल

पू. स्वा. समतानन्दजी

महादेव अभिषेक एवं गुरुपूजा

ओम् नमः शिवाय

आश्रम समाचार

संन्यास दीक्षा दिन

श्री गुरुभ्यो नमः

शुभाशीष

३० अप्रैल

आश्रम समाचार

संन्यास दीक्षा दिन

स्वा. समतानन्दजी

भण्डारा आयोजन

अन्य समाचार

सेंचल देवी मन्दिर दर्शन

२१ अप्रैल
२०२१

सेंचल

श्री राम नवमी के पावन पर्व पर

अन्य समाचार

२१ अप्रैल
२०२१

सेंचल देवी
मन्दिर

श्री
रामनवमी

अन्य समाचार

शिवाकोला - पश्चिम बंगाल

सुन्दर चाय बगीची

२० अप्रैल २०२१

अन्य समाचार

शिवाकोला - पश्चिम बंगाल

सुन्दर चाय बगीची

२० अप्रैल २०२१

अन्य समाचार

लाटपंचोर

पक्षी फोटोग्राफी

२१ अप्रैल २०२१

अन्य समाचार

चाय बगीची का सुन्दर दृश्य

२० अप्रैल

शिवाकोला

चाय बगीची में वर्कर महिलाओं के साथ

अन्य समाचार

मंत्रमुग्ध करनेवाला हिमालय दर्शन

अप्रैल
२०२१

लाटपंचोर

सुन्दर पुष्प और लताएं

अन्य समाचार

१८ से २२
अप्रैल २०२१

हार्नबिल
का इलाका

डाइनिंग हाल में ही पक्षी का घोंसला

सब भूमि गोपाल की

अन्य समाचार

१८ से २२
अप्रैल २०२१

हिमालय दर्शन

हिमालय की
वादियों में

पुरुष एवेदं
सर्वम्

अन्य समाचार

मन्दिर की दिव्यता

स्थावराणां हिमालयः

Internet News

Talks on (by P. Guruji) :

Video Pravachans on YouTube Channel

- ~ Eksloki Pravachan
- ~ Sampoorna Gita Pravachan
- ~ Kathopanishad Pravachan
- ~ Kathopanishad Chanting
- ~ Shiva Mahimna Pravachan
- ~ Bhaja Govindam
- ~ Hanuman Chalisa

Audio Pravachans

- ~ Sampoorna Gita Pravachan
- ~ Eksloki Pravachan
- ~ Eksloki Chanting

Vedanta & Dharma Shastra Group on FaceBook

Vedanta Ashram YouTube Channel

Monthly eZines

Vedanta Sandesh - May '21

Vedanta Piyush - Apr'21

आश्रम / मिशन कार्यक्रम

२९ मई २०२१ . सायं ७.०० बजे

ओनलाईन मासिक सत्संग

प्रार्थना एवं प्रवचन

आश्रम परिवार के सदस्यों के लिए विशेष

पूज्य गुरुजी स्वामी आत्मानन्दजी

प्रतिदिन प्रातः ७.०० बजे

(मंगलवार से शनिवार)

मुण्डकोपनिषद् प्रवचन (शांकर भाष्य)

आश्रम के संन्यासियों के लिए

पूज्य गुरुजी स्वामी आत्मानन्दजी